आटविक जनजातियों में संघर्ष चेतना

डॉ. सुधीर सक्सेना

इतिहास के अनेक जटिल मोड़ों, लोमहर्षक युद्धों, रक्तरंजित विद्रोहों, विदेशी आक्रमणों, सदियों की दासता और परिवर्तनों की आंधी के बावजूद जनजातीय दृष्टिकोण से भारतवर्ष का समकालीन परिदृश्य अत्यंत, समृद्ध, आकर्षक और विविधवर्णी है। समकालीन परिदृश्य का यह पक्ष उत्पीड़न के अभिशाप के बावजूद जनजातियों की अदम्य जिजीविषा के साथ-साथ सहअस्तित्व में इस महादेश की संस्कृति की गहरी आस्था को भी रेखांकित करता है। भारत का सबसे बड़ा प्रान्त मध्यप्रदेश यद्यपि एक अत्यंत आधुनिक ईकाई है और वह सन् 1956 ईस्वी में अस्तित्व में आया है, किंतु भौगोलिक दृष्टि से यह सहस्राब्दियों का सच है कि सर्वाधिक और वृहत्तर जनजातियां इस महादेश में मध्यदेश में निवास करती हैं। कौटिल्य ने अपने विश्वविख्यात ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में वनेचर जातियों को आरण्यक और आटविक वर्गों में बांटा है। आचार्य कौटिल्य ने शबर और निषाद जैसी युयुत्सु (मार्शल) जनजातियों को आटविक की संज्ञा दी है। उन्होंने राज्य की सेना में आटविक बल की अनिवार्यता को प्रतिपादित किया है। प्राचीन काल में सम्राटों ने आटविक समूहों से मैत्री भाव की नीति पर अमल किया, किंतु ईसा-पश्चात सम्राट समुद्रगुप्त के साथ ही इन जातियों के पराधीन होने का क्रम प्रारंभ हुआ। मध्ययुगीन सामंत काल में आटविक जनजातियां भारतीय और विदेशी राजवंशों, उच्चतर वर्णों और बलशाली समूहों से शासित तो रहीं, किंतु उन्होंने सत्ताकेंन्द्रों को चुनौती और उनके खिलाफ विद्रोह की टेक नहीं छोड़ी। बहुधा ऐसा भी हुआ कि आरण्यक जनजातियों का शासन-सूत्र अटाविकों के हाथ में रहा और ये आटविक शासक शक्तिशाली महाराजाओं/बादशाहों/छत्रपतियों को नज़राना या प्रतीकात्मक शुल्क देते रहे। जब-तब इन आटविक जनजातियों ने पराक्रमी नायकों के नेतृत्व में विद्रोह कर एक सीमित भूभाग में अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित की। इतिहास में ऐसे प्रसंगों की भरमार है, जब इन्होंने बरसों बाहरी आक्रमणकारियों से लोहा लिया और उनके दांत खटटे कर दिये। जब-जब अन्याय, अत्याचार और अपधर्म के लिखाफ किसी वीर नायक ने विद्रोह का झंडा बुलंद किया, इन आटविक जनजातियों ने लड़ाई में तन,मन और धन से उसका साथ दिया। महान मुगल-वंश के सबसे प्रतापी शासक सम्राट अकबर को ही लें, एक ओर तो मुगलों के खिलाफ संघर्ष कर रानी दुर्गावती के नेतृत्व में गोंडों ने काल के शिलालेख पर शौर्य की अद्‌भुत इबारत लिखी, दूसरी ओर राजपूत योद्धा महाराणा प्रताप की लड़ाई में भीलों ने इस तरह शिरकत की कि प्रताप की प्रताप-गाथा बिना भीलों के अधूरी कही जायेगी। यह अकारण नहीं है कि इन आटविक जनजातियों ने आक्रामकों के हाथों में दक्षिण में काकतीय वंश के प्रताप रुद्र देव के पराभूत होने के बाद अन्नमदेव ने बस्तर में आकर सन् 1324 ईस्वी में चालुक्य वंश की नींव डाली। इस वंश के

राजाओं ने बस्तर में बीसवीं सदी के मध्य तक राज किया बस्तर के शेष दुनिया से कटे होने के संदर्भ में यह बात एक बारगी विस्मयकारी भले ही लगे, किंतु यह नितांत सच है कि जब-जब बस्तर को अपनी विशिष्ट आरण्यक संस्कृत पर आघात की प्राप्ति हुई, बस्तर के आटविकों ने धनुष की टंकार से विद्रोह का शंखनाद किया। यह अपनी संस्कृति को बचाये रखने की दुर्दभ्य आकांक्षा की ही परिणिति थी कि आरण्यक गोंडों में राजगोंड, मुरियों में राजमुरिया, परजाओं में धुर्वा और बिंझलों में बिंझवार जैसे आटविक-समूह उपजे और उन्होंने जनजातियों की संघर्ष-चेतना को नये स्वर और आयाम दिये।

यह नितान्त भ्रामक धारणा है कि जनजातिया समुदाय के पास स्वतंत्रता की कोई अवधारणा नहीं है और वे अपने गांव-गोचर और नदी-नालों की परिधि के बाहर नहीं सोच पाते। सच तो यह है कि दुर्गम वनों और पर्वतों में निवास करने के बाद भी जनजातियों की स्वतंत्रता की आकांक्षा और संघर्ष-चेतना की लौ कभी मंद नहीं हुई। उल्टे विपरीत परिस्थितियों में यह लौ और भभकी। जनजातीय मनीषा स्पष्ट स्वरों में कहती है :

"जो माटी चो किरिया खासत
हुन माटी जेचो धन आय
देस हुनी के बलसत आय"

(जिस मिट्टी की सौगंध उठाते हो, वही माटी (धरती) जो हमारा धन है, देश उसी का नाम है। उसे ही देश कहते हैं।)

बस्तर के भतरी-गीत की उक्त पंक्तियां देश की अवधारणा को व्यक्त करने के साथ-साथ आदिवासी मन को भी उद्‌घाटित और परिभाषित करती है। संस्कृति के नामधारी पुरोधाओं द्वारा राजनीतिक-चेतना से शून्य घोषित आदिवासी जब दोनों बांह उठाकर कहता है- 'तुम चो जय-जय गाऊं माता, भारत माता, भारत माता' तो यह संदेह तिरोहित हो जाता है कि आदिम जनजाति मन अपने देश-गांव, गोत्र, नदी, पहाड़ और जंगल से आगे की बात नहीं सोच सकता। मध्य प्रदेश में एक छोर से दूसरे छोर तक दूरस्थ व दुर्गम अंचलों में बसे आदिवासियों में प्रचलित लोकगीत इस बात के जीवंत प्रमाण हैं कि आदिवासी समुदाय सात समुंदर पार से आये अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह की भावना से कभी भी रिक्त नहीं रहा। उन्होंने जब-तब शास्त्र उठाकर अंग्रेजों व उनके पिछलग्गू आतताइयों से लोहा तो लिया, किन्तु उनके समुदाय में उन शास्त्रियों (विद्वानों) का नितांत अभाव था, जो उनकी स्वतंत्रता की उद्‌दाम आकांक्षा और आजादी के रक्तरंजित प्रयासों को लिपिबद्ध करते। प्रायः सभी जनजातियां में ऐसे वेदव्यास नहीं थे, जो उनकी संघर्ष कथा को महाभारत के खण्डों में शब्दों के जरिये चित्रित करते। यही वह बिंदु अथवा संदर्भ है, जो इतिहास दोबारा लिखने की जरूरत को रेखांकित करता है तथा पराङ्‌गमुख इतिहासकारों के समक्ष लोकगीतों, मिथकों, पुराने अभिलेखों तथा कथाओं की वाचिक परंपरा में गहरे धंसकर प्रामाणित इतिहास लिखने की चुनौती भी प्रस्तुत करता है।

इसमें शक नहीं कि अंग्रेजों के खिलाफ आदिवासियों की लड़ाई सशस्त्र संघर्ष की गाथा है। सविनय अवज्ञा अथवा असहयोग के गांधीवादी प्रयोग, जिन्होंने विश्व इतिहास में सर्वथा अनूठे व अभिनव अध्याय की रचना की आदिवासी जन के लिए नये व अजनबी भी थे और विजातीय भी। हालांकि, गांधीवाद में आदिवासी स्मृति व आत्मा में पैठ गया, किन्तु मुक्ति के लिए हथियार उठाना सदियों से जनजातीय परंपरा रही है और अंग्रेजी काल में आदिवासियों ने इस परंपरा को खंडित या दाग़दार नहीं होने दिया। सोनाखान में वीरनारायण सिंह ने सन् 1856 ई.में कम्पनी बहादुर के खिलाफ रणभेरी फूंकी, तो बस्तर में इंद्रावती के तट पर धुरवाजाति के गुण्डाधूर ने सन् 1910 ई. में अंग्रेजों के खिलाफ धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाई। उधर निमाड़ में, भीमा नामक भील ने अंग्रेजों को छकाया। पारंपरिक अस्त्र शास्त्रों के बल पर अंग्रेजों से जूझने की वृत्ति एक गीत में इस तरह उभरकर आयी है : 'कुन धरे टंगिया, कुन धरे बंलुआ, कुन धरे तीर गुलेला। मर्द तो धरे तोरे अंगियारे टंगिया, नारी धरीन तोर फरसा। जंगल के रहने वाले बेगारे भैया, वाधरे तीन गुलेला। गोण्ड भैया धरे तोर लपकी बुंदुकिया, ओ मां भरे ज़ेहर के गोलिया।' आदिवासी अंचलों में प्रचलित लोकगीतों में देश के लिए कुर्बान हो गए क्रांतिकारियों को तो पालना दिया ही है, साथ ही य गीत औपनिवेशिक काल में सामान्यजन की व्यवस्था कथा को भी उजागर करते हैं। छत्तीसगढ़ के दक्षिणी भूभाग में व्यवहृत हलबी आदिवासी समुदायों की 'लिंग्वा फ्रांका' है। एक हलबी लोकगीत की पंक्तियां दृष्टव्य हैं :- लोकगायक कहता है- 'अंग्रेज राज, कंगाल होली। गोटक रूपिया चाउर सोली।' यह आदिवासी व्यक्ति की नहीं, आदिवासी समुदाय की पीड़ा है : अंग्रेजों के राज में हम कंगाल हो गए। एक रूपये में एक सोली चांवल कैसे खरीदें ? एक अन्य गीत में कहा गया है कि जब से फिरंगी राजा हो गया है, तब से अच्छा भोजन नसीब नहीं होता। यह गुलामी के दर्द की अभिव्यक्ति है और आज़ादी की उत्कट चाह भी कि अच्छा भोजन तभी नसीब होगा, जब फिरंगी इस देश से चले जायेंगे।

सन् 1857 के शहीद भीमा नामक नायक से भी आज हममें से कितने लोग परिचित हैं ? यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य है कि सम्पूर्ण उत्तरी भारत में जब 1857 के स्वाधीनता संग्राम को अंग्रेज हुकूमत ने कुचल दिया था, तब भी 1861 ई. तक निमाड़ के आदिवासी ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लोहा ले रहे थे। सम्पूर्ण, निमाड़ में क्रांतिकारियों

का जाल फैल गया था, जिनसे निपटने के लिए गुजरात से 9वीं बंगाल इफैन्ट्री को निमाड़ में बुलाना पड़ा था। क्रांतिकारियों ने खरगौन स्थित होल्कर सेना को पराजित कर उनसे शस्त्र लूट लिए थे। सेंधवा से खानदेश जाते हुए ब्रिटिश खजाने को भी उन्होंने लूट लिया था, जिसमें लगभग दो लाख रुपये थे अंग्रेज सैनिक टुकड़ी को साथ लेकर आर. एच.केटिंग्स ने स्वयं भीमा नायक व उसके अनुयायों को विनष्ट करने का दायित्व संभाला था। उसकी टुकड़ी और नायक के दल के बीच बड़वानी सिलावद मार्ग पर स्थित धावा बाबड़ी नामक पर्वतीय घाटी में पहली मुठभेड़ हुई थी, जिसमें पराजय समीप देख, भील क्रांतिकारी समीपवर्ती जंगलों में जा छिपे थे। अंग्रेज सेना निरंतर उनका पीछा करती रही और अंततः सतपुड़ा पर्वतों में स्थित रामगढ़ दुर्ग के उत्तर में स्थित पंच बावली नामक स्थान पर 13 फरवरी 1859 ई. को निर्णायक युद्ध लड़ा गया, जिसमें भील क्रांतिकारी पराजित हो गए। इस संघर्ष में 10 आदिवासी मारे गए व 4 लोग पकड़ लिए गए, जिनमें भीमा नायक की वृद्धा मां भी थी। इन सबको मण्डलेश्वर दुर्ग की जेल में बंद कर दिया गया। भीमा नायक भाग निकला था। अतः उसके विषय में जानकारियां एकत्रित करने के लिए उसकी वृद्धा मां को इतनी अधिक यातनायें दी गयीं कि 15 दिनों बाद ही उस वृद्धा के प्राण पखेरू उड़ गए। उधर गढ़ामंडला के शासक शंकर शाह को कवित्त लिखने पर अंग्रेजों ने मृत्युदण्ड दिया।

अलग-अलग काल खंड पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट हो जाता है कि मध्य प्रदेश में ऐसे आदिवासी रणबांकुरों की कमी नहीं है, जिन्होंने आजादी की लड़ाई में अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए। सतपुड़ा की वनाच्छादित पहाड़ियों और पठारों में बसी जनजातियों ने अप्पा साहब और तात्याटोपे जैसे अंग्रेजी हुकूमत के विरोधियों को न केवल पनाह दी, वरन उनकी यथासाध्य यथा संभव सहायता भी की। गोंड जमींदारों में सोनपुर के जागीरदार चैनशाह और प्रतापगढ़ के जागीरदार राजबा शाह ने न केवल अंग्रेजों के बैरी अप्पा साहब को प्रश्रय दिया, वरन उन्हें सैनिक सहयोग देकर कम्पनी सरकार का कोप भी झेला। छिंदवाड़ा के तत्कालीन प्रशासक मॉण्टगोमरी ने लिखा- 'इस पार्वत्य सामंतों ने ब्रिटिश सत्ता का प्रतिरोध किया।' इस प्रतिरोध के अपराध में कम्पनी सरकार ने दोनो सामंतों को बंदी बनाकर चांदा जेल भेज दिया। बताते हैं कि इन दोनों गोंड आदिवासी सरदारों को कम्पनी सरकार ने विष देकर मार डाला, मगर चैन शाह और राजबा शाह स्वामिभक्ति और देशप्रेम की ऐसी झिलमिल इबारत लिख गए, जिसकी कौंध आज भी मिटी नहीं है। इस गाथा के परिप्रेक्ष्य में चैन शाह और राजबा शाह को स्वतंत्रता संग्राम के प्रथम गोंड शहीदों की संज्ञा दी जानी चाहिए। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि लगभग दो वर्ष गोंड सरदारों की छत्रछाया में बिताने के बाद अप्पा साहब असीरगढ़ की ओर पलायन कर गए। अंग्रेजों ने जब पुनः फौजी घेरा कसा तो वे पंजाब चले गए और सिख महाराजा रणजीत सिंह के यहां शरण ले ली। वहीं 15 जुलाई सन् 1840 को उनकी 44 वर्ष की आयु में मृत्यु हो गयी। गोंड जागीरदारों ने देश के प्रति अपने उत्कट प्रेम का परिचय एकबार फिर सन् 1857-58 में दिया। सन् 1858 में महान छापामार सेनानी तात्याटोपे छिंदवाड़ा पहुंचा। नागपुर के भोंसलों से सहायता प्राप्ति का उसका प्रयास विफल रहा था। वह अंततः हर्राकोट (रावखेड़ी) पहुंचा, जहां के जागीरदार महावीरा सिंह ने उसे उन्मुक्त भाव से शरण दी और भरसक सहायता भी की। अंग्रेजों को तात्या के गोंड सरदारों के यहां छिपे होने की खबर लग गयी। गवर्नर जनरल ने ब्रिटिश सम्राज्ञी के क्षमादान की प्रति के साथ विशिष्ट संदेश वाहक इस ओर भेजा। यह हरकारा 7 नवम्बर को छिंदवाड़ा पहुंचा और फिर उसने मुलताई तक सफर किया, किन्तु वह तात्या तक पहुंच नहीं सका। इसी समय बटकाखापा के जागीरदार बखत सिंह की गद्दारी से अंग्रेजों को सुनिश्चित सूचना मिल गयी और छिंदवाड़ा व कामठी की सम्मिलित अंग्रेजी फौज ने हर्राकोट को घेर लिया। क्रांतिकारियों की पराजय हुई। हालांकि तात्या अंग्रेजों को चकमा देकर निकल भागे, लेकिन हर्राकोट के विद्रोही जमींदार महावीरा सिंह पकड़ लिए गए। उनकी जागीर कम्पनी ने राजसात कर ली। इस तरह महावीरा ने चैन शाह और राजबा शाह की परंपरा को जीवित रखा। आगे चलकर तांतिया भील ने भी अपने शौर्य से अंग्रेजी सरकार को छंकाने में कोई कोरकसर नहीं उठा रखी। उधर सन् 1857 में संबलपुर (उड़ीसा) के गोंड राजा सुंदरसाय के आह्वान पर उदयपुर (धर्मजयगढ़) के राजा शिवराज सिंह और बरगढ़खोला के जमींदार अजीत सिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का शंखनाद किया। अंग्रेजों ने उन पर सरगुजा, जशपुर, रायगढ़, चंद्रपुर रियासतों के सहयोग से काबू पाया और छलकपट से क्रांतिकारी राजाओं को बंदी बना लिया। सरगुजा के राजा को पुरस्कार स्वरूप उदयपुर और रायगढ़ नरेश को बरगढ़खोला की जागीर दी गयी।

आदिवासी क्रांतिकारियों की यह परंपरा वीरनारायण सिंह जैसे अनेक लोकनायकों में विस्तार और ऊंचाई पाकर 19वीं सदी में बस्तर में भुमकाल (सन् 1910 ई.) में और परवान चढ़ी। लगभग दो दशक बाद जंगल सत्याग्रह में आदिवासियों ने एकबार फिर अपनी राष्ट्रभक्ति का ज्वलंत परिचय दिया। बैतूल में गंजन सिंह कोरकू ने जबर्दस्त संगठन और नेतृत्वशक्ति का परिचय दिया। जम्बाड़ा में रामू और मकडू गोंड शहीद हुए। सन् 1942 को भारत छोड़ों आंदोलन में घोड़ाडोंगरी (शाहपुर) क्षेत्र में विष्णु सिंह गोंड ने अंग्रेजों के खिलाफ शोले भड़का दिए। विष्णु सिंह के नेतृत्व में आदिवासियों ने कई रोज घोड़ाडोंगरी इलाके पर कब्जा जमाये रखा। पुलिस गोलीबारी में वीरसा गोंड शहीद

हुआ और अनेक आहत हुये। बंदी जिर्रा गोंड की बाद में कारावास में मृत्यु हो गयी। सन् 1939 में दुर्ग जिले के वनाच्छादित क्षेत्र में रामाधीन गोंड ने जंगल सत्याग्रह छेड़ा। गांधी युग में गोंडा सरदार विष्णु सिंह और कोरकू नेता गंजनसिंह ने आटविक संघर्ष चेतना को नया आयाम दिया।

इसे विडंबना कहें या काल की गति अथवा गौरवशाली स्मारकों और आज़ादी के लड़ाकों के प्रति हमारी बदसलूकी कि शहीदों के नाम लोकस्मृति से लुप्त होते जा रहे हैं। बस्तर में गुण्डाधूर केवल लोकगीतों में जीवित है और निमाड़ में भीमा नायक विस्मृति के गर्त में जाने को अभिशप्त। वीरनारायण सिंह, गुण्डाधूर, चैनशाह, राजबा शाह आदि के गांवों के वंशजों की कोई सुध नहीं लेता। इतिहास की पोथियों में क्रांतिकारियों का अनुल्लेख आजादी के साथ छल है और इतिहास के साथ द्रोह। अपने गौरव पुरुषों की स्मृति को सहेजना किसी कौम के स्पंदन का परिचायक है। अनेक नायक आज भी विस्मृति की कब्रगाह में दफन हैं। उत्खनन सिर्फ खंडहरों, ढूहों और दफ़ीनों का ही नहीं होता, वक्त आने पर इतिहास भी उत्खनन की मांग करता है। अब वक्त आ चुका है कि अंधेरे में फड़फड़ाते पन्ने रोशन हों। यूं भी इतिहास के तिलिस्म दृढ़ इच्छाशक्ति की कुंजियों से खुला करते हैं। बेशक, जनजातियों की नायकत्व की अपनी अवधारणा है और उनके अपने-अपने मिथक हैं। जहां तक 'मध्यदेश' नामक स्थानवाचक संज्ञा का प्रश्न है, यह एक प्राचीन संज्ञा है और संस्कृत ग्रंथों में 'मध्यदेशे प्रकीर्तितः' जैसी उक्ति का अनेकशः उपयोग हुआ है। यह संज्ञा किंचित परिवर्तनों के साथ वर्तमान मध्यप्रदेश की भौगोलिक स्थिति का पर्याय है। इस प्रदेश में जनजातियों की स्वातंत्र्योत्तर स्थिति पर दृष्टिपात करें तो अनेक त्रासद तथ्य उभरते हैं। यह जनजातियों की मानसिकता Psyche को बूझने और उनके व्रणों के उपचार में हमारी विफ्लता का ही परिणाम है कि मध्यप्रदेश में अधिकांश जनजातियां अशांत हैं। इस भूभाग के आज के अधिकांश आंदोलन आदिवासियों की रोजी-रोटी अस्मिता और अधिकारों से जुड़े हुए हैं, चाहे वह होशंगाबाद के समीप सतपुड़ा अंचल में केसला की लड़ाई हो अथवा नर्मदाघाटी का नर्मदा बचाओ आंदोलन, जिसमें बाबा आमटे, सुश्री मेधा पाटकर और सुश्री अरूंधति राय जैसे व्यक्तित्व शिरकत कर रहे हैं। यह जनजातीय संघर्ष चेतना का ही संबल है कि नगरी सिंहावा के आदिवासी आधी सदी से लड़ रहे हैं। यह आटविक वृत्ति ही है कि बस्तर जब-तब अशांत हो जाता है और हिंसक नक्सलवादी आंदोलन को पांव पसारने के लिए

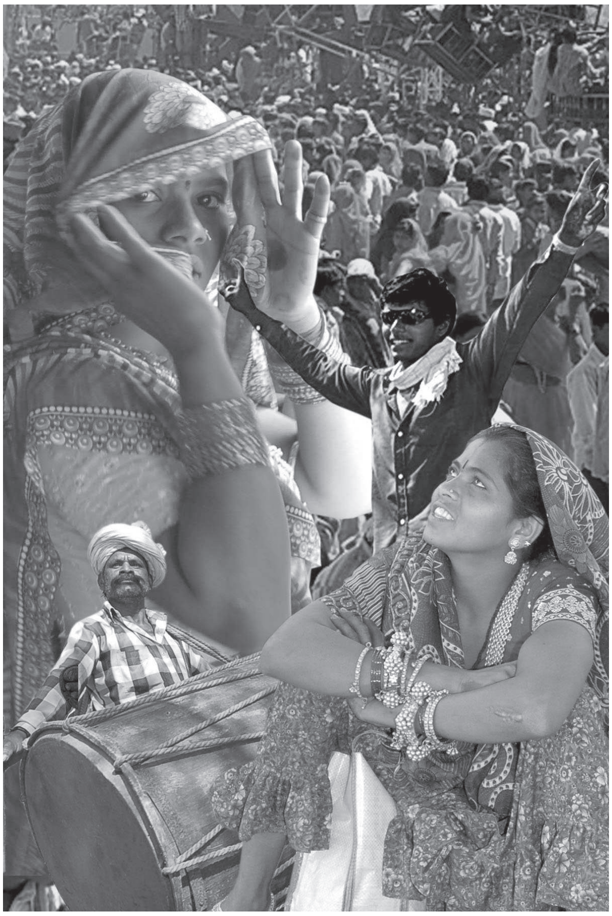

बस्तर सबसे उपयुक्त भूखण्ड नजर आता है। महाराज प्रवीर चंद भंजदेव की हत्या और किरंदूल गोलीकाण्ड जैसी घटनायें आदिवासी मानस को आज भी सालती हैं। कभी चपका में बाबा बिहारी दास उठ खड़े होते हैं, तो कभी बस्तर में छठवीं अनुसूची लागू करने की मांग जोर पकड़ लेती है। क्या वजह है कि विभिन्न दलों में बटे आदिवासी नायक सर्वश्री अरविन्द नेताम, बलीराम कश्यप और मनकूराम सोंढी एक स्वर से बस्तर को अलग स्वायत्तशासी राज्य बनाने की मांग करते हैं।

❐❐

43ए, अंसल प्रधान कालोनी,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो.-09425022404